तबलीगी जमात

डॉ. शंकर शरण

‘यथावत’ पत्रिका
16-30 अप्रैल 2020
01-15 मई 2020

काफिर देश में तबलीगी जमात



प्रोफेट मुहम्मद के हू-ब-हू अनुकरण का अर्थ क्या है? काफिरों के प्रति प्रोफेट की नीति क्या थी? इस का बेलाग उत्तर तीनों मूल इस्लामी ग्रंथों-सीरा, हदीस, और कुरान में उपलब्ध है। कि शांतिपूर्ण प्रचार और हथियारबंद जिहाद, एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। इसे केवल जगह, समय और काफिरों की स्थिति देख कर तय किया जाता है कि कब क्या करना है।

शंकर शरण

यह हमारे राजनीतिक-बौद्धिक जीवन का बैरोमीटर है कि जिस संस्था के काम से पिछले सौ साल से पूरी दुनिया प्रभावित हो रही है, और ठीक राजधानी दिल्ली में जिसका मुख्यालय है-

उसके बारे में हम नगण्य जानते हैं। कोरोना के आकस्मिक दुर्योग से ही तबलीगी जमात का नाम अभी घर-घर पहुंचा। तभी यह भी पता चला कि बड़े-बड़े लोगों को उसके बारे में कुछ पता नहीं।

'तबलीग' यानी प्रचार को इस्लामी शब्दावली में 'दावा' भी कहते हैं। जिस का अर्थ है, आमंत्रित करना, प्रेरित करना, उस पर बल देना। सो तबलीगी जमात सच्चा इस्लाम अपनाने, और हरेक गैर-इस्लामी चीज छोड़ने का प्रचार/दावा करती है। इसमें खान-पान, रहन-सहन, कपड़े-लत्ते, भाषा-बोली, विचार-मान्यताएं, दोस्ती-दुश्मनी, आदि सब कुछ शामिल हैं। अपने जीवन के सभी काम प्रोफेट मुहम्मद के वचन, कर्म और मॉडल पर ढालना। तबलीगी जमात का बड़ा सरल संदेश है- 'ऐ मुसलमानों! मुसलमान बनो।'

इसके संस्थापक मौलाना मुहम्मद इलियास (1885-1944) थे। पहले सहारनपुर मदरसा में पढ़ाते थे, पर मदरसों का काम असंतोषजनक पाकर इस्तीफा दे दिया। तबलीग का मिशन आरंभ किया। निजामुद्दीन मरकज इसका केंद्र बना। आज विश्व में इसके 15 करोड़ से अधिक सदस्य कोई सौ देशों में फैले हुए हैं। इसके सम्मेलन विभिन्न एशियाई देशों में होते रहते हैं। इसका सालाना जमावड़ा मक्का में हज के बाद दूसरा सबसे बड़ा होता है। इसके प्रसिद्ध अनुयायियों में भारत के पूर्व राष्ट्रपति जाकिर हुसैन, पाकिस्तानी पूर्व राष्ट्रपति फारुख लेघारी, मुहम्मद तरार, क्रिकेटर शाहिद अफरीदी, इंजमामुल हक और दक्षिण अफ्रीकी खिलाड़ी हाशिम अमला आदि रहे हैं।

मौलाना वहीदुद्दीन खान की पुस्तक 'तबलीगी मूवमेंट' (1986) से इस के बारे में प्रमाणिक जानकारी मिलती है। मौलाना इलियास जैसे सचेत मुस्लिमों को यह देख कर भारी रंज होता था कि दिल्ली के आस-पास जो लोग मुसलमान बनाए गए, वे सदियों बाद भी बहुत चीजों में हिन्दू रंगत लिए हुए थे। उदाहरण के लिए, वे गोमांस नहीं खाते थे; अपनी चचेरी बहनों से शादी नहीं करते थे; कई हिन्दू पर्व-त्योहार मनाते थे; देवी-देवताओं का भी आदर करते थे; धोती पहनते, कुंडल, कड़ा धारण करते थे; चोटी रखते थे। यहां तक कि अपना नाम भी हिन्दुओं जैसे भूप सिंह, नाहर सिंह, आदि रखते थे। कुछ तो कलमा पढ़ना भी नहीं जानते थे। बल्कि जो पक्का मुसलमान कायदे से नमाज पढ़ता होता, उसे कौतुक से देखने लगते थे। अलवर में 19वीं सदी के अंत में बंदोबस्त अफसर रहे अंग्रेज मेजर पियोले ने लिखा है कि ''मेवाती मुसलमान अपनी परंपराओं और आदतों में आधे हिन्दू थे।'' इसी से क्षुब्ध होकर मौलाना इलियास ने मुसलमानों को सही बनाने का मिशन, यानी तबलीग शुरू की।

मुसलमानों में हिन्दू प्रभाव का कारण मौलाना इलियास ने उनका मिलजुल कर रहना समझा था। इसका सीधा उपाय उन्हें हिन्दुओं से अलग करना था, ताकि मुसलमानों को 'बुरे प्रभाव से मुक्त किया जाए।' मौलाना वहीदुद्दीन अपनी पुस्तक में इस की तारीफ करते लिखते हैं कि कुछ दिन तक लगातार इस्लामी व्यवहार का प्रशिक्षण देकर उन्हें 'नया मनुष्य बना दिया गया'। इस कूट मुहावरे का अर्थ यह कि प्रशिक्षु मुसलमानों को अपनी जड़ से उखाड़, दिमागी धुलाई करके, हर चीज में हिंदुओं से अलग किया गया। तरह-तरह के उपाय से उन्हें हिन्दुओं के प्रति दुरावपूर्ण बना कर खालिस इस्लामी बनाया गया। खास तरह की पोशाक, दाढ़ी, खान-पान, बोल-चाल, आदि अपना कर। इसी को 'नया मनुष्य' बनना कहा जा रहा है। तबलीग प्रशिक्षित मुसलमानों ने वापस जाकर स्थानीय मेवातियों में वही प्रचार किया। मस्जिदों की संख्या तेजी से बढ़ी। इस से 'पूरा मेवात पूरी तरह बदल गया।' यही तबलीग का मिशन है। हिन्दुओं के साथ मिल-जुल कर रहने वाले मुसलमानों को पूरी तरह विलग करना। उन्हें पूर्णतः शरीयत पाबंद बनाना। पूर्वजों के रीति-रिवाजों से घृणा रखना। दूसरे मुसलमानों को भी यही प्रेरणा देना।

> **तबलीगी काम को महात्मा गाँधी द्वारा खलीफत आंदोलन (1919-24) के सक्रिय समर्थन से भारी ताकत मिली। उस के एजेंडे को अप्रत्याशित बल मिला। आखिर स्वयं सर्वोच्च हिन्दू नेता गाँधी इस्लामी सिद्धांत को सुंदर सर्टिफिकेट ('नोबल फेथ ऑफ इस्लाम') देकर उस का और प्रोफेट का प्रचार कर रहे थे।**

तबलीगी काम को महात्मा गांधी द्वारा खलीफत आंदोलन (1919-24) के सक्रिय समर्थन से भारी ताकत मिली। उस के एजेंडे को अप्रत्याशित बल मिला। आखिर स्वयं सर्वोच्च हिन्दू नेता गांधी इस्लामी सिद्धांत को सुंदर सर्टिफिकेट ('नोबल फेथ ऑफ इस्लाम') देकर उसका और प्रोफेट का प्रचार कर रहे थे। यह भारतीय इतिहास में पहले कभी नहीं हुआ था! इतना ही नहीं, जिस एक काम से अंततः काफिरों की, यानी हिन्दुओं की रक्षा हो सकती थी, उसे बंद करवा दिया। अर्थात, आर्य समाज का शुद्धि प्रयास। उस से मानवीय जीवन-शैली के प्रति आकर्षण रखने वाले मुसलमानों को स्वेच्छा से अपने पूर्वजों के धर्म में आने का एक रास्ता मिला था। गांधी जी ने उसे रोक दिया।

पाकिस्तानी विद्वान प्रो. मुमताज अहमद के अनुसार खलीफत जिहाद का लाभ जिन नेताओं को हुआ, उन में मौलाना इलियास भी थे। खलीफत से बने आवेश का लाभ उठाकर मूल इस्लाम और आम मुसलमानों के बीच दूरी पाटने, तथा उन्हें हिन्दू समाज से तोड़ने में आसानी हुई। जो मुसलमान मिलाजुला जीवन जीते रहे थे, वे हिन्दुओं के सचेत दुश्मन बन बैठे। खलीफत के बाद तबलीग का काम इतनी तेजी से बढ़ा कि जमाते उलेमा ने एक गोपनीय बैठक में तबलीगी काम को स्वतंत्र रूप में चलाने का फैसला किया।

हालांकि, मौलाना वहीदुद्दीन के अनुसार, ''आर्य समाज के शुद्धि प्रयासों से नई समस्याएं पैदा हुईं, जो मुसलमानों को अपने पुराने धर्म में वापस ला रहा था। मेवाती मुसलमानों की मजहबी-सांस्कृतिक दुर्बलता के कारण आर्य समाजियों को भारी सफलता मिली।'' यही स्वामी श्रद्धानन्द पर जमात के कोप के कारण का भी संकेत है। स्वामी श्रद्धानन्द की हत्या के बाद ही वह पहली बार प्रमुखता से (1927) समाचारों में आया था। पुलिस ने हत्या के सूत्र निजामुद्दीन स्थित तबलीगी जमात केंद्र से जुड़े पाए थे।

तब से गंगा में बहुत पानी बह चुका है। हाल के दशकों में तबलीगी जमात के

कारनामे सारी दुनिया में देखे गए। 1992 में अयोध्या में बाबरी ढांचे के विध्वंस के बाद भारत, पाकिस्तान, बांगलादेश में अनेक हिन्दू मंदिरों पर हमले में इसका नाम आया था। फिर 2001 में न्यूयॉर्क पर आतंकी हमले के बाद तो वैश्विक इस्लामी आतंकवाद पर विविध देशों में तबलीगी जमात का नाम बार-बार उभरता रहा। जाने-माने सुरक्षा विशेषज्ञ और पूर्व-गुप्तचर अधिकारी बी. रामन के अनुसार पाकिस्तान और बंगलादेश में तबलीगी जमात के संबंध हरकत उल मुजाहिदीन, हरकत उल जिहादे इस्लामी, लश्करे तोयबा, जैशे-मुहम्मद, आदि विविध इस्लामी आतंकवादी संगठनों से पाए गए हैं।

हरकत-उल-मुजाहिदीन ने तबलीगी जमात के साथ अपने संबंधों को स्पष्ट स्वीकार किया था, कि 'दोनों ही सच्चे जिहादियों का अंतरराष्ट्रीय नेटवर्क है।' 1980 के दशक में छह हजार से ज्यादा तबलीगी हरकत उल मुजाहिदीन के कैंपों में प्रशिक्षित हुए, जो अफगानिस्तान में जिहाद लड़ने गए थे। (साउथ एशिया एनालिसिस ऑर्ग, 15 सितंबर 1999)। हरकत उल मुजाहिदीन ने ही दिसंबर 1998 में एयर इंडिया विमान का अपहरण कर कंधार में उतार कर बंधक बनाया था। जिस के बाद यहां वाजपेई सरकार ने मौलाना मसूद अजहर समेत चार कुख्यात आतंकवादियों को छोड़ा था। फिर गोधरा में साबरमती एक्सप्रेस में 59 हिन्दू तीर्थयात्रियों को जिंदा जलाने वाले कांड में गिरफ्तार लोगों में मौलाना उमरजी भी तबलीगी नेता था (इंडिया टुडे, 24 फरवरी 2003)। वही उस कांड के 'मास्टरमाइंड' के रूप में चर्चित हुआ था।



फ्रांसीसी सुरक्षा अधिकारियों ने तबलीगी जमात को उग्रवाद के ऑफिस का बगल वाला कमरा ('एंटी-चेम्बर') कहा था। यह विशेषण अकारण न था। प्रसिद्ध फ्रांसीसी अखबार ल मोंद (25 जनवरी 2002) के अनुसार फ्रांस में सक्रिय उग्रवादियों में 80% तबलीगी जमात से आए हैं।

अमेरिकी एफ.बी.आई. के अनुसार अल कायदा अपने रंगरूट तबलीगी जमात के माध्यम से चुनता रहा है (न्यूयॉर्क टाइम्स, 14 जुलाई 2003) और अमेरिका में जमात की अच्छी संख्या है। विभिन्न आतंकी संगठन तबलीगी जमात के रायविन्द, पाकिस्तान स्थित केंद्र जाकर अपने रंगरूट बनने के लिए आमंत्रित करते रहे हैं। पाकिस्तानी गुप्तचर सूत्रों के अनुसार पाकिस्तान-अफगानिस्तान के आतंकी कैंपों में 400 अमेरिकी तबलीगियों ने प्रशिक्षण लिया है। (यू.एस. न्यूज एंड वर्ल्ड रिपोर्ट, 10 जून 2002)। अमेरिका में लगभग 15 हजार तबलीगी मिशनरी सक्रिय हैं, जिन्हें वहां सुरक्षा के लिए खतरा माना जाता है। (आर्कीव दे साइंस सोसियाल दे रिलीजियों, पेरिस, जनवरी-मार्च 2002)

मोरक्को में 2003 में कासाब्लांका सिनागॉग पर बड़े आतंकी हमले के सिलसिले में सुरक्षा अधिकारियों ने 60 से अधिक तबलीगियों पर मुकदमा चलाया था (फाइनेंशियल टाइम्स, लंदन, 6 अगस्त 2003)। उस हमले का मास्टरमाइंड तबलीगी यसुफ फिकरी था, जिसे मृत्युदंड दिया गया था। (बीबीसी न्यूज, 12 जुलाई 2003)। फिलीपीन्स सरकार ने तबलीगी जमात को सऊदी धन ला-लाकर इस्लामी आतंकवादियों को पहुंचाने का माध्यम, तथा फिलीपीन्स में पाकिस्तानी जिहादियों को आड़ देने का आरोप लगाया था। (मनीला टाइम्स, 12 अक्तूबर 2001। उजबेकिस्तान अधिकारियों ने तबलीगी जमात पर चार सौ



उजबेकियों को आतंकी कैंपों में भेजने का आरोप लगाया था। (स्ट्रेटेजिक एफेयर्स, नई दिल्ली, 1 फरवरी 2001)

ऐसे अंतरराष्ट्रीय उदाहरण के बावजूद, कुछ लोग तबलीगी जमात के 'शान्तिपूर्ण प्रचार', इसके ऊपरी गैर-राजनीतिक स्वरूप तथा जिहाद में अंतर करते हैं। यह इस्लामी सिद्धांत व इतिहास के प्रति साफ अज्ञान दर्शाता है। वे परख नहीं करते कि प्रचार किस चीज का किया जाता है? प्रोफेट मुहम्मद के हू-ब-हू अनुकरण का अर्थ क्या है? काफिरों के प्रति प्रोफेट की नीति क्या थी? इसका बेलाग उत्तर तीनों मूल इस्लामी ग्रंथों- (सीरा, हदीस, और कुरान) में उपलब्ध है। शांतिपूर्ण प्रचार और हथियारबंद जिहाद, एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। इसे केवल जगह, समय और काफिरों की स्थिति देख कर तय किया जाता है कि कब क्या करना है। साथ ही, एक ही समय कोई मुसलमान एक प्रकार का, जबकि अन्य दूसरे प्रकार का काम करते हैं। वे एक-दूसरे को विविध तरीकों से सहयोग देते हैं, जिस का निर्देश और रास्ता भी स्वयं प्रोफेट मुहम्मद ने बताया था।

इसलिए, काफिरों द्वारा किसी को 'अच्छा' और किसी को 'गलत' मुसलमान मानना एक भ्रम है। वे अपनी मानवीय इकहरी नैतिकता से ऐसी कल्पना कर लेते हैं। सारी स्थिति को इस्लाम की दोहरी नैतिकता की नजर से समझने की जरूरत महसूस नहीं करते।

इन बातों की पुष्टि मौलाना वहीदुद्दीन की उक्त पुस्तक से भी होती है, जिस में तबलीगी जमात का इतिहास बड़े गर्व से बताया गया है। वहीदुद्दीन बड़े कद्दावर मुस्लिम हैं। टाइम्स ऑफ इंडिया जैसे बड़े-बड़े अंग्रेजी पत्रों में इन के लेख, साक्षात्कार आते थे। इसलिए तबलीगी जमात पर वहीदुद्दीन के विचार जानना अतिरिक्त रोचक व प्रमाणिक है। मौलाना वहीदुद्दीन संघ-परिवार के भी बड़े प्रिय रहे हैं! इस हद तक कि वे आर.एस.एस. द्वारा गठित 'सर्वपंथ समादर मंच' के उदघाटनकर्ता और संस्थापक सदस्य हैं। इस हेतु वे अप्रैल 1994 में नागपुर में डॉ. हेडगेवार की समाधि पर निमंत्रित किये गये थे। वे संघ-परिवार के 'आदर्श मुस्लिम' और 'राष्ट्रवादी मुस्लिम' हैं।

> **तबलीगी जमात पर वहीदुद्दीन के विचार जानना अतिरिक्त रोचक व प्रमाणिक है। मौलाना वहीदुद्दीन संघ-परिवार के भी बड़े प्रिय रहे हैं! इस हद तक कि वे आर.एस.एस. द्वारा गठित 'सर्वपंथ समादर मंच' के उदघाटनकर्ता और संस्थापक सदस्य हैं। इस हेतु वे अप्रैल 1994 में नागपुर में डॉ. हेडगेवार की समाधि पर निमंत्रित किये गये थे।**

उन्हीं वहीदुद्दीन के शब्दों में, ''तबलीगी जमात एक महान आंदोलन है जिसने अल्लाह के काम में एक नया उत्साह भरा। इसके संस्थापक मौलाना इलियास का परिवार अपना वंश वलीउल्लाह परिवार से जोड़ता है जिन्हें अल्लाह ने इस्लाम में आई विकृति सुधारने को चुना था। जो विकृति तैमूर (बाबर) परिवार की गलत समझ से आ गई थी।'' नोट करें, यहां वहीदुद्दीन बादशाह अकबर की 'गलत समझ' का संकेत कर रहे हैं जिसने हिन्दुओं के प्रति उदार नीति आरंभ की थी। यह भी, कि वलीउल्लाह (1703-62) वही हैं जिन्होंने अफगानिस्तान के अहमद शाह अब्दाली को भारत पर हमला कर पुनः इस्लामी राज बनाने का न्योता दिया था।

आगे वहीदुद्दीन बताते हैं कि मौलाना इलियास को यह देख कर रोष होता था कि सूफी हजरत निजामुद्दीन (1238-1325) की कोशिशों से यहां जो गंवार, देहाती लोग मुसलमान बने, वे सदियों गुजर जाने के बाद भी बहुत चीजों में हिन्दू आदतें रखते थे। इस में जिसे 'हजरत निजामुद्दीन की कोशिशें' कहा गया, वह सुलतान बलवन के समय का जिहाद था। बलवनों, खिलजियों, और तुगलकों ने बहादुर मेवाती हिन्दुओं पर जुल्म करके उन्हें घसीट कर मुसलमान बनाया था। अनेक सूफियों ने हमलावरों को बुला कर कई हिन्दू शासकों को खत्म करवाया, मंदिर तोड़े और वहीं पर अपने अड्डे बनाए। उन्होंने खुद भी जिहाद लड़ा और जिहादियों को प्रशिक्षित किया। उन्हीं में जो मारे जाते थे, उन्हें शाहिद व शहीद कहा जाता था।

हजरत निजामुद्दीन भी मोइनुद्दीन चिश्ती (1141-1236) के चेले थे, जो मध्य एशिया से शहाबुद्दीन गोरी के हमले के दौरान अजमेर आए थे। अजमेर में प्रसिद्ध शिव-मंदिर का ध्वंस करके चिश्ती ने वहीं अड्डा बनाया। जिसे आज सूफी-दरगाह कह कर हिन्दू नेता भी नियमित चढ़ावा चढ़ाते हैं। जबकि उसी की मदद से शहाबुद्दीन गोरी ने पृथ्वीराज चौहान को मारा था। खुद मोइनुद्दीन चिश्ती के शब्दों में, 'हमने पिथौरा को जीवित पकड़ा और उसे इस्लामी सेना के सुपुर्द किया।' (एस. ए. ए. रिजवी, ए हिस्ट्री ऑफ सूफीज्म इन इंडिया)।



उसी तर्ज पर हजरत निजामुद्दीन की 'कोशिशें' थीं, जिस की असलियत छिपाकर वहीदुद्दीन ने उनकी और मौलाना इलियास की तारीफें लिखी हैं। बहरहाल, तबलीगी जमात का पहला बड़ा सम्मेतन 1941 में निजामुद्दीन में हुआ, जिसमें 25 हजार मुसलमान आए थे। इलियास की 1944 में मृत्यु के बाद उनके बेटे मुहम्मद युसुफ जमात के प्रमुख बने। उन्होंने तबलीग फैलाने के लिए पूरे भारत और विदेशों की यात्राएं कीं। तब अरब से भी मुसलमान निजामुद्दीन और देवबंद आने लगे। इस तरह, तबलीग एक अखिल भारतीय और अंतरराष्ट्रीय आंदोलन बनता गया।

वहीदुद्दीन के अनुसार, ''मौलाना युसुफ के अनुसार धरती पर हमारा दबदबा सुधारा हुआ जीवन जीने पर निर्भर है। उन्होंने कहा, 'प्रोफेट के नमूने का अनुकरण करो। जो ऐसा नहीं करते और दूसरों को भी नहीं करने कहते, वे अल्लाह द्वारा वैसे ही तोड़ दिए जाएंगे जैसे वह अंडे के खोल के साथ करता है... प्रोफेट की कोशिशों से जैसे ही (मुसलमान) लोगों ने खुद को सुधारा, वैसे ही अल्लाह ने रोमनों और फारसियों पर अपना जलजला भेज दिया।''

इस तरह वहीदुद्दीन तबलीगी जमात के कसीदे काढ़ते हैं। या तो संघ परिवार के दिग्गजों ने कभी वहीदुद्दीन को पढ़ने की जरूरत नहीं समझी, अथवा उन्हें मौलाना की साफ बातें भी समझ न आईं! उस

यह सब वहीदुद्दीन ने गदगद होकर लिखा है। उन्होंने निजामुद्दीन मरकज में अपने पहले अनुभव (1966) का वर्णन इस प्रकार किया है, "निजामुद्दीन औलिया के मजार के पास स्थित बंगला-वाली मस्जिद सुधार के केंद्र के रूप में दशकों से प्रसिद्ध है। आज यह वैश्विक आंदोलन का केंद्र है।

पुस्तक में एक अध्याय है, 'उम्मा-नेसः इस्लामी ब्रदरहुड'। इसमें मौलाना युसुफ का एक भाषण है जो उन्होंने अपनी मृत्यु से तीन दिन पहले रावलपिंडी, पाकिस्तान में 30 मार्च 1965 को दिया था। उसमें मौलाना ने कहा, ''उम्मा की स्थापना अपने परिवार, दल, राष्ट्र, देश, भाषा, आदि की महान कुर्बानियां देकर ही हुई थी। याद रखो! 'मेरा देश', 'मेरा क्षेत्र', 'मेरे लोग', आदि चीजें इस्लामी एकता तोड़ने की ओर जाती हैं, और इन सब को अल्लाह बाकी किसी भी चीज से ज्यादा नामंजूर करता है।... राष्ट्र और अन्य सामुदायिक समूहों के ऊपर इस्लाम की सामूहिकता सर्वोच्च रहनी चाहिए। मुस्लिम भाईबंदी ही इस्लाम का सर्वोच्च सामाजिक आदर्श है। प्रोफेट के अंतिम हज में दी गई सीख इसी पर आधारित है। जब तक यह आदर्श न पा लिया जाए तब तक इस्लाम पूरी तरह नहीं आ सकता।''

यह सब वहीदुद्दीन ने गदगद होकर लिखा है। उन्होंने निजामुद्दीन मरकज में अपने पहले अनुभव (1966) का वर्णन इस प्रकार किया है, ''निजामुद्दीन औलिया के मजार के पास स्थित बंगला-वाली मस्जिद सुधार के केंद्र के रूप में दशकों से प्रसिद्ध है। आज यह वैश्विक आंदोलन का केंद्र है। हम इस की तुलना शरीर में हृदय से कर सकते हैं। जैसे हृदय से रक्त-संचार पूरे शरीर में होकर फिर हृदय में वापस पहुंचता है। वैसे ही यहां से जाने वाले लोग फिर वापस आकर अपने को भावनात्मक रूप से रीचार्ज करते हैं, ताकि फिर नए उत्साह से यात्रा कर सकें।''

वहीदुद्दीन ने निजामुद्दीन मरकज में होने वाली मजलिसों में अमीर (जमात के प्रमुख) द्वारा अलग-अलग क्षेत्रों में भेजे जा रहे तबलीगियों के नाम पढ़ कर घोषित करने, उनके एक-एक कर उठकर अमीर से जाकर हाथ मिलाने, फिर उन से दुआ पाने वाले दृश्य की तुलना गदगद होकर इस कल्पना से की है, ''जब प्रोफेट मुहम्मद मजलिसे-नवाबी में बैठकर मुसलमानों का आहवान करते थे और उन्हें दस्तों में दूर-दूर भेजते थे ताकि जाहिलों को इस्लाम का संदेशा दें।''

जिन काफिरों ने प्रोफेट मुहम्मद की जीवनी मूल स्त्रोतों से नहीं पढ़ी है, वे सोच भी नहीं सकते कि वहीदुद्दीन विह्वल होकर किस चीज को याद कर रहे हैं! साथ ही, चतुराई और मक्कारी से किस सच को छिपा रहे हैं। प्रोफेट ने कभी, कहीं, कोई शांतिपूर्ण उपदेशक या प्रचारक नहीं भेजा था। निरपवाद रूप से उनके तमाम दस्ते सैनिक अभियान और हमले होते थे। जिस के द्वारा एक के बाद एक अरब कबीलों और पास के इलाकों को तलवार के जोर से इस्लाम में शामिल किया गया। जिस ने भी इंकार किया, उन्हें खत्म कर डाला गया। उनकी संपत्ति लूट ली गई। उनके परिवार गुलाम बनाकर बेचे गए। यह सब इस्लाम के तीनों मूल ग्रंथों में असंदिग्ध रूप से, बार-बार, और प्रमाणिक तफसील के साथ दर्ज है।

स्थितियां बदलीं इरादे नहीं

पिछले सौ साल से, भारत के हिन्दू लोग मुस्लिम राजनीति के सामने एक विकट असहाय स्थिति में आ गए। उन्हें उन के अपने ही नेताओं, बौद्धिकों, लेखकों ने पक्के दुश्मन को आदर देने के लिए मजबूर करना शुरू किया। अब तक वे इस्लाम को कोसते थे, उससे लड़ने का अधिकार और हौसला रखते थे, जो भारतीय भाषाओं की कहावतों में अभी भी मिलता है। अब गांधीजी ने हिन्दुओं को भ्रमित करके चुप रहने को मजबूर किया।

शंकर शरण



तबलीगी जमात और इस्लामी इतिहास के सारे विवरण यही दिखाते हैं कि आज स्थितियां बदल गई हैं, मगर इरादा वही है। काफिरी और काफिरों को खत्म करना, और पूरी दुनिया में इस्लाम का कब्जा बनाना। जमात का उद्देश्य हर कहीं ऐसे मुसलमान तैयार करना है, जो मौका मिलने पर हथियार उठाकर वही कर सकें। हर चीज में प्रोफेट मुहम्मद के अनुकरण का यही अर्थ है।

प्रो. बारबरा मेटकाफ के अनुसार, तबलीग का मॉडल वही आरंभिक काल वाला जिहाद है। तबलीगी जमात के प्रमुख की 'अमीर' वाली पदवी भी उसी का संकेत है। 'अमीर' सैनिक-राजनीतिक कमांडर होता था, न कि कोई शिक्षक। अतः जमात की टोलियों की यात्रा कोई प्रचारक दल नहीं, बल्कि गश्ती ('पेट्रोलिंग') दस्ते जैसी चीज है। इस में किसी इलाके की निगरानी, उस के प्रति रणनीति, आदि बनाना उद्देश्य है। याद करें, हाल में सीरिया-ईराक में 'इस्लामी स्टेट' (2014) घोषित करने वाले

अल-बगदादी ने भी अपने लिए 'अमीर' की पदवी ही रखी थी।

आश्चर्य यह है कि सारा इतिहास और वर्तमान सार्वजनिक रूप से प्रकाशित रहने के बावजूद हिन्दू नेता और संगठन इस्लामी सिद्धांत, व्यवहार, जमातें, और विशेषकर काफिरों के प्रति उन की नीति (राजनीतिक इस्लाम) के बारे में घोर अंधेरे में रहते हैं। तभी तो मौलाना वहीदुद्दीन के आशीर्वाद से शुरू कराए गए मंच जैसा ही एक और संगठन 'राष्ट्रीय मुस्लिम मंच' बना कर वही अंधेरा और अधिक फैलाने का काम किया जा रहा है। जबकि इतिहासकार सीताराम गोयल ने अपनी पुस्तक 'स्टॉक टेकिंग...' (1997) में मौलाना वहीदुद्दीन और 'राष्ट्रवादी' मुसलमानों वाली प्रवंचना पर चेतावनी भी दी थी। पर आत्म-मुग्ध हिन्दूवादियों ने उस की उपेक्षा की। फलतः उन के दोनों मंच मुसलमानों को मानवीय नैतिकता की ओर लाने के बदले उलटे मुहम्मदी नैतिकता को ही श्रद्धा-सुमन चढ़ाकर इस्लामी कट्टरता को धार देने का काम करते हैं।



वस्तुतः हिन्दू नेताओं की समस्या यह है कि वे ज्ञान, काम, और वास्तविकता के बदले सदैव व्यक्ति, भंगिमा, और दिखावे को महत्व देते हैं। इसीलिए वे वहीदुद्दीन जैसे मुस्लिमों के मृदु व्यवहार और कपटी शब्दजाल से मोहित होते हैं। जबकि ऐसे मुस्लिम उग्र कट्टरपंथी मौलानाओं से ज्यादा खतरनाक हैं। क्योंकि इन्होंने मूल इस्लाम की दोहरी नैतिकता और छद्म का जमकर प्रयोग किया। जगह और समूह देख कर अलग-अलग तरह की बातें करना। इसी के सधे उपयोग से नानाजी देशमुख, के.आर. मलकानी, और दत्तोपंत ठेंगेड़ी जैसे संघ परिवार के बड़े-बड़े नेता वहीदुद्दीन पर लट्टू होते रहे।

फिर, तबलीगी जमात की सफलता में उस की कटिबद्धता का भी बड़ा हाथ है। उसके नेता आत्म-प्रचार, आत्म-प्रशंसा और पदों-कुर्सियों के फेर में कभी न रहे। लक्ष्य के सामने उन्होंने अपने संगठन या नेता के नामो-शोहरत की कभी परवाह न की। साथ ही, इस्लाम के प्रति हिन्दू नेताओं, बौद्धिकों के घोर अज्ञान का चुपचाप दोहन किया। इसीलए तो एक पुलिस स्टेशन से लगा उन का अंतरराष्ट्रीय मुख्यालय होने पर भी उन का काम बेखटके चलता है। विविध सत्ताधारी नेताओं में तबलीगी, देवबंदी नेताओं के प्रति आदर रहा है। मानो बकरों में कसाई के प्रति आदर-भाव हो! संघ-परिवार में मौलाना वहीदुद्दीन के प्रति 'अपने' आदमी वाला उत्साह और कैसे समझा जाए?

> **आश्चर्य यह है कि सारा इतिहास और वर्तमान सार्वजनिक रूप से प्रकाशित रहने के बावजूद हिन्दू नेता और संगठन इस्लामी सिद्धांत, व्यवहार, जमातें, और विशेषकर काफिरों के प्रति उन की नीति (राजनीतिक इस्लाम) के बारे में घोर अंधेरे में रहते हैं। तभी तो मौलाना वहीदुद्दीन के आशीर्वाद से शुरू कराए गए मंच जैसा ही एक और संगठन ‘राष्ट्रीय मुस्लिम मंच’ बना कर वही अंधेरा और अधिक फैलाने का काम किया जा रहा है।**

इतिहास की दृष्टि से यह जानना भी जरूरी है कि तबलीगी जमात वाली चिंता यहां बहुत पहले से मुस्लिम चिंतकों में रही थी। जैसा मौलाना इलियास और वहीदुद्दीन के अवलोकनों से भी प्रमाणित होता है, ग्रामीण भारत के आम मुसलमान सदियों तक हिन्दू रीति-रिवाजों से जुड़े रहे थे। जबरन, लाचारी, धोखे, आदि किसी भी तरह मुसलमान बना लिए जाने के बावजूद उन के पूर्वजों ने इस्लाम को मन से स्वीकार नहीं किया था। वह उन पर ऊपर से ओढ़ाए गए लबादे जैसा ही सीमित रहा था। इसीलिए सचेत मुसलमानों द्वारा उन्हें पक्का मुहम्मदी बनाने की कोशिशें पहले भी होती थीं। यह काफिरों का सौभाग्य था कि वे कोशिशें कभी अति-उत्साह, कभी जल्दबाजी, या दुस्साहस के कारण विफल होती रहीं। कभी आम मुसलमानों को अपने पूर्वजों की परंपराओं से जबरन विमुख करने, अथवा समय से पहले काफिरों के खिलाफ हथियार उठा लेने के कारण उन के प्रयास विफल होते रहे। इस में वे खुद मारे जाते रहे। सैयद बरेलवी और शाह मुहम्मद रमजान इस के उदाहरण हैं।

लेकिन 1920 के दशक में जब जमीयत उलेमा ने तबलीग का काम फिर शुरू किया, तो मौका अनुकूल साबित हुआ। 1857 के जिहाद की विफलता के बाद उच्च वर्गीय मुस्लिमों ने अंग्रेज शासकों के प्रति वफादारी की नीति रखी थी। इस से उन्हें लाभ मिले। विशेषकर कांग्रेस के उभरने के बाद, अंग्रेजों ने हिन्दुओं के राजनीतिक जागरण के विरुद्ध मुसलमानों का उपयोग शुरू किया। यह बंग-भंग (1905-09) आंदोलन के दौरान साफ देखा गया। इस से मुस्लिम नेताओं में आत्मविश्वास बढ़ा।

काफिरों के दुर्भाग्यवश, गांधी द्वारा खलीफत आंदोलन (1919-24) में बेशर्त कूद पड़ने और कांग्रेस को भी उस में झोंक देने से मुस्लिम नेताओं को बहुत बड़ी और नये प्रकार की ताकत मिली। आखिर स्वयं गांधीजी मुसलमानों के सर्वोच्च कमांडर खलीफा और प्रोफेट मुहम्मद का प्रचार कर रहे थे! यह हिन्दुओं के लिए मर्मांतक चोट साबित हुई।

यह भारत में पहले कभी नहीं हुआ था कि किसी बड़े हिन्दू ने इस्लाम को 'भद्र धर्म' का तमगा दिया। तब तक भारत के

हिन्दू राजाओं, विचारकों, संतों, शिक्षकों और आम जनगण के लिए इस्लाम वही था, जो वह वस्तुतः है! जिस का प्रत्यक्ष अनुभव, सदियों से, भारत के कोने-कोने में, विभिन्न प्रकार के मुस्लिम शासकों, सूफियों, सरदारों के हाथों, सभी हिन्दुओं को होता रहा था। पहली बार वह सब झुठलाकर, उस पर पर्दा डालकर, तमाम तरह की नकली बातें कह कर, महात्मा गांधी ने इस्लाम को एक नया हथियार थमाया। ऊपर से, स्वामी दयानन्द को कोसते हुए मुसलमानों के बीच आर्य समाज के शुद्धि काम को बंद करवा दिया।

तभी से, यानी पिछले सौ साल से, भारत के हिन्दू लोग मुस्लिम राजनीति के सामने एक विकट असहाय स्थिति में आ गए। उन्हें उनके अपने ही नेताओं, बौद्धिकों, लेखकों ने पक्के दुश्मन को आदर देने के लिए मजबूर करना शुरू किया। अब तक वे इस्लाम को कोसते थे, उससे लड़ने का अधिकार और हौसला रखते थे, जो भारतीय भाषाओं की कहावतों में अभी भी मिलता है। अब गांधीजी ने हिन्दुओं को भ्रमित करके चुप रहने को मजबूर किया। फिर इतिहास को विकृत कर इस्लाम की इज्जत-आफजाई के लिए दबाव दिया। इस तरह गांधी से शुरू होकर, फिर कांग्रेस, नेहरूवादियों, वामपंथियों द्वारा सत्ता बल से वही बार-बार दुहराने से यह शिक्षित हिन्दुओं के बीच एक स्थापित आत्मघाती परंपरा हो गई। यह कितना बड़ा हथियार इस्लामी नेताओं को अनायास मिला! जरा रुक कर इसे पूरी पृष्ठभूमि में समझना चाहिए।

काफिरों द्वारा उन्हें धार्मिक-वैचारिक आदर देने के लिए मजबूर करने का यह नायाब हथियार भारत के मुस्लिम चिंतकों, नबावों, बादशाहों को भी पहले कभी हासिल नहीं था। यानी हिन्दुओं में इस्लामी मतवाद को एक आदरणीय धर्म-मत मानना। उसे हिन्दू धर्म के बराबर सम्मान। इस नये हथियार का इस्लामी नेताओं ने भरपूर फायदा उठाया। उन्होंने सचेत हिन्दुओं को नियमित फटकारना शुरू किया जो उस की आलोचना करते थे। यही स्वतंत्र भारत में 'सेक्यूलरिज्म' की आधिकारिक भाषा बनी, जो मूलतः महात्मा गांधी की देन है। इस ने तबलीगी काम को नए सिरे से धार दी। यह तबलीगी नेताओं ने स्वयं खुशी से नोट किया है।

उसी हथियार से पूरी कांग्रेस को इस्लामी



संगठनों, कार्यों, मदरसों, मकतबों, मरकजों, के प्रति सदैव झुकाए रखने में जमाते उलेमा ने बड़ी सफलता पाई। यह काफिरों (हिन्दुओं) की विडंबना है कि कांग्रेस ने 'राष्ट्रवादी मुसलमान' कह कर जिन्हें महिमामंडित किया, वे अधिकांश पक्के इस्लामी थे- मौलाना मौदूदी, मशरिकी, इलियास, अब्दुल बारी, आजाद, आदि। उन में से कइयों द्वारा मुस्लिम लीग की भारत-विभाजन मांग का विरोध करने के पीछे ताकत बढ़ा कर पूरे भारत पर कब्जे की मंशा थी। यह उन के द्वारा जिन्ना की आलोचना में जाहिर है। इसी को कांग्रेसियों ने 'देशभक्ति' कहकर ताली बजाई। वही परंपरा- इस्लाम को 'महान धर्म' और पक्के इस्लामियों को 'राष्ट्रवादी' कह-कह कर प्रसन्न होना- कांग्रेस की नकल में सभी दलों ने अपना ली। फिर भाजपा में तो हर चीज कांग्रेस से 'बेहतर' कर दिखाने की ललक है!

ऐसी भ्रामक समझ के कारण ही भारत विभाजन के बाद केवल मौलाना मौदूदी ही पाकिस्तान गए। शेष सभी इस्लामी नेता यहीं रहे। यह संयोग न था। अलीगढ़, देवबंद, तबलीगी, आदि तमाम इस्लामी संस्थान वैसे ही बने रहने दिए गए। मानो भारत को खंड-खंड तोड़कर इस्लामी बनाने का रास्ता बनाए रखना ही सबसे पवित्र सिद्धांत हो! उपनिषदों से लेकर विवेकानन्द तक के सिद्धांत उस से बहुत नीचे हों। यही कारण है कि मौलाना मौदूदी की बनाई हुई जमाते इस्लामी ने भारत में 'सेक्यूलरिज्म' को अपने लिए बेजोड़ उपहार ('ब्लेसिंग') कहा। प्रो. मुमताज अहमद के अनुसार, उस से 'भारत में इस्लाम का भविष्य सुरक्षित होने की गारंटी' हो गई।

बंटवारे के पहले इस्लामी नेताओं ने इस की कल्पना भी नहीं की थी! उन्होंने सहज राजनीतिक व्यवहार से यही समझा था कि जब मुसलमानों के लिए अलग पाकिस्तान बन रहा है, तो शेष भारत गैर-इस्लामी होगा। लेकिन कांग्रेस नेतृत्व में मधुर, कपोल-कल्पनाओं, आरामदायक बातों का गांधीवादी डोज इतना गहरा भर चुका था कि उन्होंने पिछले तमाम अनुभवों से कतई कोई सीख नहीं ली। आखिर, जब संपूर्ण इस्लामी सिद्धांत आदरणीय है, तो उस के व्यवहार पर माथापच्ची करने की क्या जरूरत! मूंदहु आंख कतहु कुछ नाहीं। इस से आरामदायक स्थिति किसी नेता के लिए क्या होगी?

फलतः स्वतंत्र भारत में सभी इस्लामी जमातों के काम बेरोकटोक, बल्कि अतिरिक्त सुविधा से चलते रहे। वे मजे से मुसलमानों को तबलीगी, तालिबानी बनाते हैं। अफगानिस्तान और पाकिस्तान के तालिबान यहां के देवबंद की पैदाइश हैं,

यह सारी दुनिया जानती है। इन्होंने अपने शागिर्दों को मूल इस्लाम और प्रोफेट के अनुकरण के सिवा कुछ नहीं पढ़ाया है। जैसे यह कि सामान्य नमाज पढ़ने से जितना सवाब (फल) मिलता है, वह तबलीग या जिहाद में भाग लेने से 49 करोड़ गुना बढ़ जाता है।

आज भी ऐसे ही प्रचार, ठीक देश की राजधानी में स्थित तबलीगी जमात के मुख्यालय से पूरी दुनिया में किए जा रहे हैं। इसी पर हिन्दू नेता व बुद्धिजीवी स्वयं प्रसन्न होते रहते हैं, कि वे पाकिस्तानियों की तुलना में कितने अच्छे हैं। तमाम इस्लामी संस्थानों को मजे से अपनी गतिविधि करने देते हैं। बल्कि समय-समय पर उन्हें अनुदान, जमीन, संस्थान, मंत्रालय, आयोग, पदक और पदवियां भी देते रहते हैं। परन्तु वे काम क्या कर रहे हैं? उस का काफिरों के हितों पर क्या असर पड़ता है? उस से देश और दुनिया में क्या परिणाम हो रहे हैं? इस का उन्होंने कभी कोई आकलन नहीं किया। हमारे देश की किसी भी पार्टी, सरकार के प्रकाशन, महान नेताओं के वक्तव्य, पुस्तक, या 'संकलित रचनाओं' में तबलीगी जमात पर एक पाराग्राफ भी खोजना दूभर है।

हिन्दुओं को पूछना चाहिए- आखिर हिन्दू धर्म-समाज की रक्षा का दम भरने वालों ने क्या लिखा, बोला, किया है? लगभग सभी हिन्दू नेताओं ने गांधीजी के दिए मंत्र का अंध-पालन किया कि 'नोबल फेथ ऑफ इस्लाम' की सही समझ उसके अपने मौलानाओं को ही है! इसलिए वे मौलाना जो भी कहते, करते, मांगते हैं उसमें हमें, यानी कांग्रेस, भाजपा, आदि सत्ताधारियों को केवल मदद करते रहना है। यही परंपरा गांधीजी ने खलीफत आंदोलन में शुरू की, जिसे लगभग सभी पार्टियां निष्ठापूर्वक निभा रही हैं।

यही कारण है कि नदवांतुल उलमा के सदर अली मियां ने एक बार इतमीनान से भाषण दिया कि भारत तो ग्रीक, रोमन, जैसी पुरानी सभ्यताओं की तरह ''प्राचीन स्मारक से अधिक कुछ नहीं है। और केवल इस्लाम ही भारत को इस्तांबुल से जकार्ता तक के देशों का नेता बना सकता है।'' इस का उपाय बताते हुए उन्होंने कहा, ''मैं उनमें से हूं जो मानते हैं कि एक मजहबी तंत्र तब तक नहीं बन सकता, जब तक कि मजहब के हाथ में राजनीतिक सत्ता न आ जाए और सरकार इस्लामी बुनियादों पर आधारित हो।'' यही नदवांतुल जमाते उलेमा और तबलीगी जमात के बीच की कड़ी है।

इस प्रकार, अली मियां भारत में इस्लामी राज बनाने का दावा खुल के कर रहे थे। अर्थात् काफिरों के धर्म, समाज का पूर्ण विनाश। जो काम इस्ताम्बुल से रबात तक पहले हो चुका, और भारत से तोड़े गए टुकड़ों में भी लगभग पूरा हो गया है। जिस का सपना शाह वलीउल्लाह, सैयद बरेलवी, शाह मुहम्मद रमजान, मुहम्मद इकबाल, और मौलाना इलियास ने देखा था।

यह ठीक है कि तबलीगी जमात राजनीति में प्रत्यक्ष हिस्सा नहीं लेती। उस के काम 'शांतिपूर्ण' हैं। मगर यह शांति आरंभिक दौर वाले प्रोफेट मुहम्मद की मक्का में अपनाई हुई शांति नीति है, क्योंकि उन के हाथ में पर्याप्त ताकत नहीं है। इस बात को इसी रूपक के साथ, खुद मौलाना वहीदुद्दीन ने भी 'तबलीगी मूवमेंट' में ही लिखा हैः ''कभी कभी शांति बनाए रखना जरूरी होता है, जैसे हुदैबिया में किया गया था, और कई बार सुरक्षा करनी जरूरी हो जाती है, जैसे कि बद्र और हुनैन में हुआ था।'' इस दोहरी भाषा में कही गई बात, और बद्र की घटनाओं का भयावह अर्थ काफिरों के लिए क्या है- यह प्रोफेट की आधिकारिक जीवनी पढ़कर समझ सकते हैं।

अतः काफिरों को तबलीगी जमात के क्रिया-कलापों का प्रतिकार करना ही चाहिए। उसी शांति से जिससे मौलाना इलियास ने अपना काम किया था। और वही कार्य जो स्वामी श्रद्धानन्द ने करके दिखाया था। स्वयं मेवात से बड़ी संख्या में मुसलमान वापस हिन्दू धर्म में आए थे, जो मौलाना इलियास का भी पहला कार्य-क्षेत्र था। शुद्धि कार्य का डॉ. अंबेदकर ने भी लिखित समर्थन किया था। इस से स्पष्ट है कि शुद्धि कार्य न केवल उचित है, बल्कि भारतीय मुसलमानों में सदैव कुछ लोग वापस हिन्दू धर्म में आना चाहते रहे हैं। यह स्वभाविक मानवीय भावना है। सारी दुनिया में ऐसे विवेकशील मुसलमान हैं, जो एकहरी मानवीय नैतिकता को शरीयत की दोहरी नैतिकता से बेहतर समझते हैं। जो काफिरों को नीच मानकर उनके लिए अलग, और मुस्लिमों के लिए अलग नियम रखना अनुचित मानते हैं। अतः इस विचार का प्रचार सर्वथा अनिवार्य है, जिसे गांधीजी ने बंद करवा दिया था। उससे हिन्दुओं पर इस्लामी चोट और बढ़ाने का उपाय कर दिया। जो लगातार बढ़ती भी गई।

उसे पुनः आरंभ करने के अलावा काफिरों के पास कोई चारा नहीं। इस्लाम की दोहरी नैतिकता, शरीयत के दोहरे नियम, और मोमिन-काफिर भेद की निंदा करने, तथा उस के बदले एक मानवीय नैतिकता स्थापित करना ही हिन्दू रक्षा का सटीक उपाय है। यह शांतिपूर्ण होने का साथ-साथ सरल भी है। जिस चीज को इस्लामी जमातें अपनी ताकत समझती हैं, वही उन की सब से बड़ी कमजोरी भी है।

पहले तो, किसी लोकतांत्रिक देश में इस्लामी देशों जैसे दोहरे कानूनों का तर्क नहीं चल सकता। दूसरे, कुफ्र के खिलाफ इस्लामी प्रचार, स्वतः काफिरों को भी इस्लाम के खिलाफ प्रचार का अधिकार देता है। आखिर भारत पर शरीयत का शासन नहीं। अतः यहां एक ही, मानवीय नैतिकता चल सकती है। जिसमें सभी नागरिकों को बराबर अधिकार हैं। यही अंग्रेजी राज में भी था। इसीलिए आर्य समाज के शुद्धि आंदोलन पर न अंग्रेजों, न मुसलमानों ने आपत्ति की थी। स्वामी दयानन्द के समय से ही यह चल रहा था। इस्लाम की आलोचना, अथवा शुद्धि कार्य न तो अनैतिक, न गैर-कानूनी था। इसीलिए इसे कभी चुनौती नहीं दी गई।

यह तो गांधीजी द्वारा शुद्धि की निंदा करने से मुस्लिम नेताओं को मौका मिला, कि वे भी नाराज हों! वरना तब तक वे इसे बराबरी का खेल मानकर स्वीकार करते थे। यह आज भी संभव है। वही काफिरों का कर्तव्य है। आखिर, यदि मुसलमानों को हिन्दुओं का धर्मांतरण कराने की छूट है, तो हिन्दू भी वही कार्य उलट के कर ही सकते हैं।

महर्षि श्रीअरविन्द ने भी इस की अनुशंसा की थी, और इसी को मुस्लिम समस्या का एक मात्र समाधान बताया था। समय आ गया है कि हिन्दू अपने गांधीवाद-भ्रमित नेताओं को नमस्कार करके सही मार्ग पर वापस आएं। अन्यथा जो लाहौर, ढाका, श्रीनगर के हिन्दुओं का हुआ, वही आगे होगा। इस्लामी मतवाद का मुकाबला झूठे प्रपंच नहीं कर सकते। यह गांधीजी से लेकर आज तक के तमाशों तक देखा जा सकता है। केवल सत्य ही उसे हरा सकता है।